

मुझे धूप चाहिए

हमारी ये ज़मीन, ये आसमान सिर्फ हम इन्सानों की नहीं। यहाँ पंछी भी हैं, पौधे भी, जानवर भी, छोटे-छोटे कीड़े भी। इन सबके साथ हमारी ज़िन्दगी का ताना-बाना बुना हुआ है। इन्सानों के इनके साथ रिश्तों के कई रंग हैं। ऐसे ही कुछ रंग लिए हैं ये आठ कहानियाँ।

आठ कहानियाँ। जो देखती हैं अपने आसपास की दुनिया को। रिश्तों और संवेदनाओं के कुछ उलझे-सुलझे एहसासों को।

किशोरावस्था की ओर बढ़ने वालों और किशोरों की कोशिशों से, उनकी दुनिया से रुबरु कराती किताब। पढ़िए, और खो जाइए इन अनोखी-सी कहानियों में।

ISBN: 978-93-81300-62-6

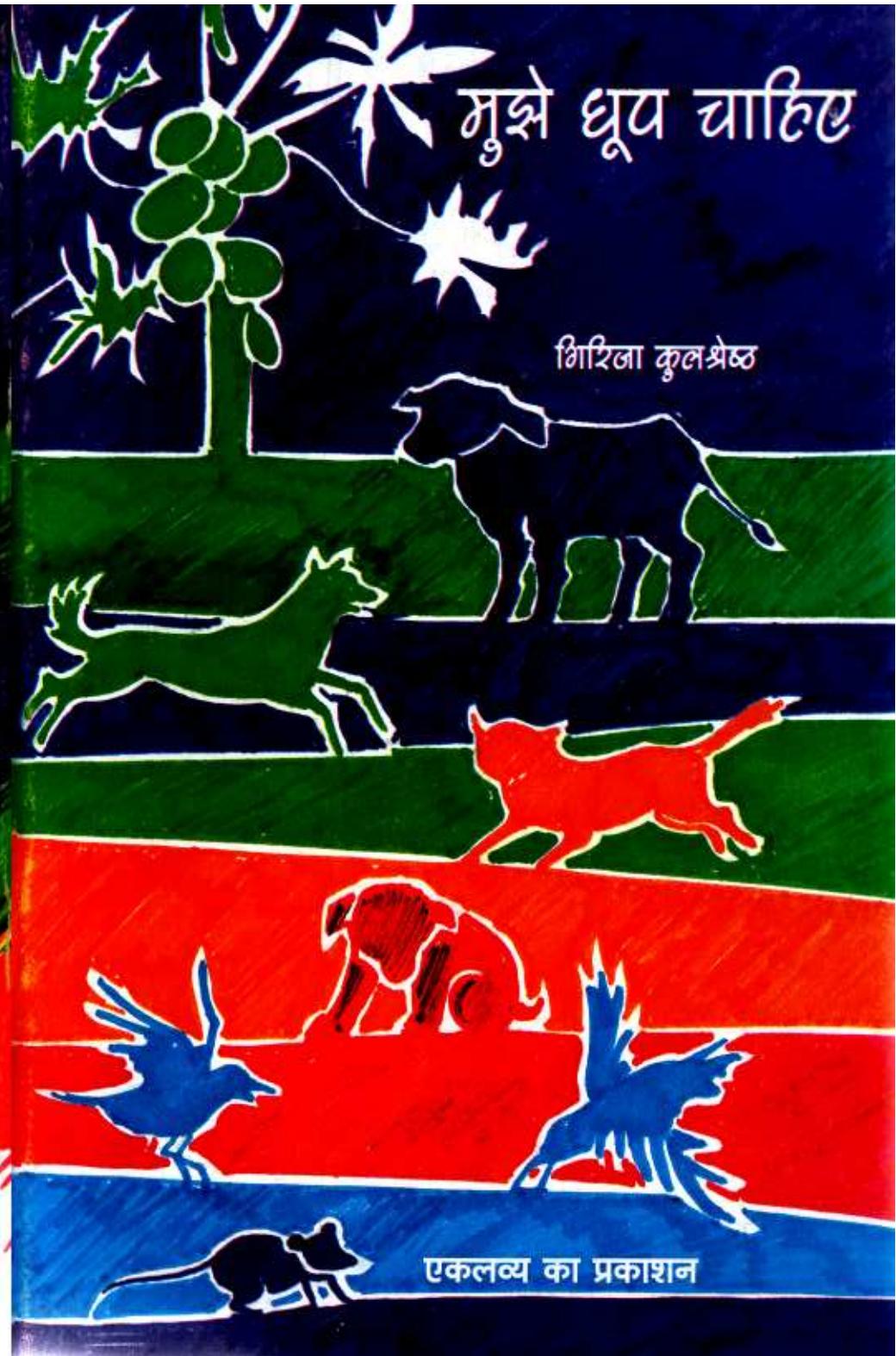


9 789381 300626



A1215H

इलेक्ट्रॉनिक SRTT & NRRT के विभिन्न सहयोग से विकसित



मुझे धूप चाहिए

गिरिजा कुलश्रेष्ठ

एकलव्य का प्रकाशन

मुद्दे धूप चाहिए



गिरिजा कुलश्रेष्ठ
चित्रांकन: सौम्या शुक्ला



एकलव्य का प्रकाशन

कौन कहाँ

1. पूसी की वापसी	5
2. इन्तजार	11
3. लड़ाकू	15
4. मुझे धूप चाहिए	18
5. मीकू फँसा पिंजरे में	22
6. कुट्टू कहाँ गया?	28
7. माँ	32
8. भैया का दोस्त	36

मुझे धूप चाहिए

MUJHE DHOOP CHAHIE

लेखिका: गिरिजा कुलश्रेष्ठ

चित्रांकन: सौम्या शुक्ला

पहला संस्करण: फरवरी 2013/3000 प्रतियाँ

कहानियाँ © गिरिजा कुलश्रेष्ठ

कागज़: 70 gsm नेचुरल शेड व 220 gsm पेपर बोर्ड (कवर)

प्राग इनिशिएटिव, सर रतन टाटा ट्रस्ट व नवजाबाई रतन टाटा ट्रस्ट
के वित्तीय सहयोग से विकसित

ISBN: 978-93-81300-62-6

मूल्य: ₹ 25.00

प्रकाशक: एकलव्य

ई-10, शंकर नगर बी.डी.ए. कॉलोनी,
शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016 (म.प्र.)

फोन: 0755 - 255 0976, 267 1017

www.eklavya.in / books@eklavya.in

मुद्रक: भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, भोपाल, फोन 0755-243769



कुछ बातें...

कहानियाँ - यानी शब्दों के ताने-बाने में बुनी भावनाएँ और संवेदनाएँ। ऐसी संवेदनाएँ जिनके कारण पढ़ने वाले को कहानियाँ अपनी-सी लगती हैं। ऐसा लगता है कि यह तो मेरी ही कहानी है, या लगता है कि अरे... यह तो मैंने भी देखा है पर समझ नहीं पाई।

इस संग्रह की आठों कहानियाँ अलग-अलग तरह से रिश्तों के धागों को खोलती हैं। मसलन, 'पूसी की वापसी' और 'कुट्टू कहाँ गया' कहानियों में सन्तान के प्रति प्रेम के रिश्ते को दर्शाया गया है। 'मीकू फँसा पिंजरे में' दोस्ती का खूबसूरत एहसास कराती है और परिवार की चिन्ता भी। 'माँ' कहानी में द्वन्द्व है और उससे बाहर निकलने का सुकून भी है। 'मुझे धूप चाहिए' में तेज़ी से बड़े होने की वैसी ही ललक दिखाई देती जो हर बड़े होते बच्चे और युवावस्था की तरफ बढ़ते किशोर में नज़र आती है।

कहानियों में खास यह भी है कि इनमें जुड़ाव है - चाहे वह पात्रों के बीच का हो, प्रकृति के साथ हो या इन्सान और जानवर के रिश्ते की ही बात हो। परिवेश भी ऐसा है जो कहानियों को जीवन्त बनाता है। कहीं भी कृत्रिमता नहीं।

उम्र के इस दौर में बचपन के जाने और युवावस्था के आने के बीच हम खुद अपने तथा चहुँओर की चीज़ों, जैसे परिवार, दोस्त, जानवर आदि के प्रति अपने अन्दर की भावनाओं और संवेदनशीलता को एक नए अन्दाज़ में परिभाषित होते देखते और महसूस भी करते हैं। इस उथल-पुथल के दौर में ऐसी कहानियाँ दिल को छू जाती हैं जो हमारी दुनिया को हमारे दृष्टिकोण से सामने रखें।

तो पढ़िए गिरिजा कुलश्रेष्ठ की ऐसी ही कुछ कहानियाँ और कीजिए सेर एक अनोखी दुनिया की जिसमें हर तरह के अनुभव जीवित होंगे।

एकलव्य

पूसी की वापसी

"मास्स ऊस्स... मास्स ऊस्स..."

पूसी ने कुछ बेचैन होकर अपने बच्चे को पुकारा जो अभी डेढ़ माह का ही था लेकिन माँ के पास रहने की बजाय बाहर मस्ती करने में ज्यादा रुचि लेने लगा था। पूसी अकेली बैठी ऊब रही थी और काफी देर से उसे बुला रही थी। माँ बनने के बाद उसे किसी पर भरोसा नहीं था और ज्यादा देर तक बच्चे को अपने से दूर नहीं रख सकती थी।

पूसी का सन्देह बेबुनियाद नहीं था। बच्चों के जन्म के बाद ही लोगों ने उसके व बच्चों के बीच दखल देना शुरू कर दिया था। वह बच्चों को जन्म देने से पहले एक कच्चे घर के अँधेरे-से कोने में आ गई थी। शायद उस घर के लोगों को पता था कि पूसी माँ बनने वाली है।



“घर में बिल्ली का प्रसव होना शुभ होता है,” एक बूढ़ी औरत कह रही थी। यही नहीं, उसके लिए दूध भी रखा गया था। लेकिन बच्चों के जन्म के बाद पुस्ती को किसी पर भरोसा नहीं रहा।

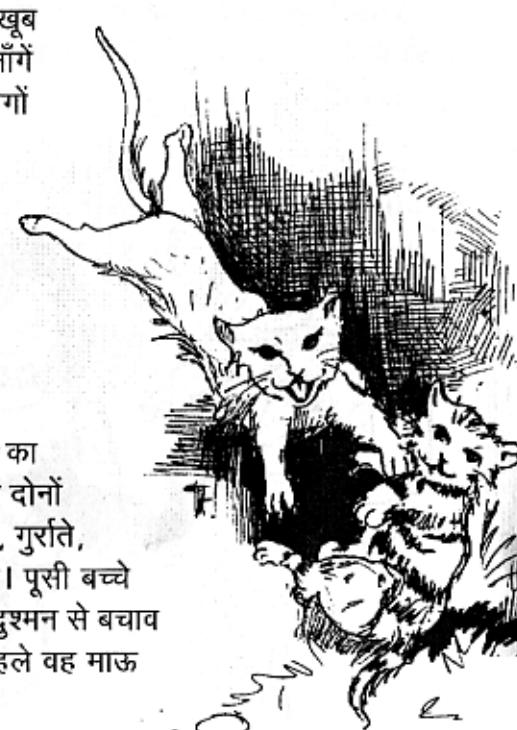
जब घर के बच्चे बार-बार उसके नन्हे-मुन्नों को देखने आते तब पूसी नाराज होकर गुर्जाने लगती थी। लेकिन बच्चे क्या मानते! चींटी की कतार की तरह वे पूसी और बच्चों को देखने आने लगे। नन्हे बच्चों को उठाउठाकर देखने लगे, “अरे एक की तो आँखें भी नहीं खुलीं! यह बच्चा तो बड़ा मस्त है, ज्यादा दूध पीता होगा और इसकी आँखें पूसी की तरह पीली नहीं, नीली हैं। कंचे जैसी खबसरत!”

पूसी ने यह सब किसी तरह बर्दाश्त कर लिया क्योंकि वह खुद बचपन से इसी घर में दूध पीकर बड़ी हुई है। सबका खूब प्यार भी मिला है। पर अब बात उसके नहें बच्चों की थी। उनमें भी दो बच्चे पता नहीं कर, कैसे, कहाँ चले गए? बाकी रह गए एक बच्चे पर ही पूसी अपना प्यार लूटाने लगी थी।

अपने इकलौते बेटे को पूसी बड़ी लय और मिठास के साथ पुकारती थी। स्वर को खूब लम्बा खींचकर – “म्हास्सस लहस्स...।” सो घर के तमाम बच्चे भी उसे ‘माऊ’ कहकर बलाने लगे।

माऊ अपने नाम को खूब पहचानता था और सुनकर छलाँगें लगाता था। वह घर के सभी लोगों से घुल-मिल गया था। रात में माँ को छोड़कर गुल्लू या गुल्लू की नानी की रजाई में घुसकर आराम से सो जाता था। पूसी को लगता कि जरूर ये लोग उसके बच्चे को छीनना चाहते हैं।

सुबह-शाम माझ के खेलने का
समय होता था । पूसी और माझ दोनों
आँगन में दौड़ते, छलाँगें लगाते, गुराते,
लङ्घने-झगङ्घने का नाटक करते । पूसी बच्चे
को शिकार पर हमला करने व दुश्मन से बचाव
करने के दाँव-पेंच सिखाती । पहले वह माझ



को झपट्टा मारकर दबा लेती, फिर पेट और गर्दन पर दाँत गड़ाने का अभिनय करती। माऊ हल्के से चीखता, छूटने की कोशिश करता। तभी मिनी चिल्लाती, “अरे, पूसी अपने बच्चे को मार डालेगी। नानी कहती है कि भूखी बिल्ली अपने बच्चे को खा जाती है।”

माऊ इस चीख-पूकार का लाभ उठाकर छूट जाता

पूसी सोचती थी कि ये बच्चे माऊ को कभी कुछ सीखने नहीं देंगे। फिर वह निष्क्रिय लेट जाती और पूँछ के सिरे को हिला-हिलाकर माऊ को हमला करने का संकेत देती। माऊ पहले तो बुद्ध बना-सा देखता रहता, फिर अचानक हिलती हुई पूँछ पर झापटता। कभी दूर जाकर तिरछा चलता हुआ, पूँछ फुलाकर अकड़ता हुआ आता। पीठ बीच में ऊँट की तरह उठता जाती। फिर दबे पाँव आकर माँ के ऊपर हमला कर देता। पूसी बेटे की चतुराई पर खुश हो जाती।

लेकिन उसकी खुशी अधूरी रह जाती जब गुल्लू आँगन में प्लास्टिक का बिच्छू या छिपकली डाल देता और माऊ माँ को छोड़कर नकली बिच्छू पर अपने दाँव-पेंच आजमाता। उसे चीर-फाड़ने की पुरज़ोर कोशिश करता।

“इतना बेवकफ होना अच्छा नहीं है।” पुसी बच्चे को समझाती

“बेवकूफ क्यों?” माऊ भोलेपन से माँ को देखता, “मैं तो यूँ ही खेल रहा था। गल्ल मेरा दोस्त है।”

“हुँ...,” पूसी गुर्रती “दोस्त और दुश्मन की पहचान तुझे अभी कहाँ है मेरे बच्चे! तेरा एक दोस्त टॉमी भी है... चाहे जब तुझे अपने पास बुला लेता है। खाने में शामिल कर लेता है। क्या तू जानता है बच्चे कि वह तेरा सबसे बड़ा दुश्मन है?”

माऊ चुपचाप माँ की नसीहतें सुन लेता। दुश्मन क्या होता है वह नहीं जानता। वह इतना जानता है कि घर के सभी लोग उसे प्यार करते हैं। वे दुश्मन नहीं हो सकते और यही सोचकर माऊ बेखौफ होकर खूब शरारतें किया करता। कभी मिनी की फ्रॉक खींचकर उसे जगा या डरा देता, कभी गुल्लू की नानी की साड़ी को उलझाकर तार से नीचे गिरा लेता। कभी उनके पैरों में अड़कर उन्हें चलने से रोकता तो कभी गुल्लू को पंजे मार-मारकर छेड़ता। माऊ खूब जानता था कि पंजा मारते समय नाखूनों का उपयोग केवल गुस्से में या फिर दुश्मन के लिए किया जाता है। वह यह भी

जानने लगा था कि सब लोग उसके पंजा मारने पर पीड़ा से नहीं बल्कि चौंककर या डरकर चीखते हैं, “हट बदमाश कहीं के!” माऊ ऐसी डिड़की सुनकर और भी खुशी से उछलने लगता था।

यही नहीं वह हर चीज़ को बारीकी से देखता-सूँधता, फिर उछलकर भागता। एक दिन ऐसे ही एक घड़े में झाँककर देखने लगे माऊ जी... आखिर यह अँधेरा-सा है क्या बला! बस गिर गए जनाब घड़े में। जब गुल्लू ने निकाला तो फिर शैतानियाँ शुरू।

पर पूसी यह सब देखकर खुश होने की बजाय परेशान थी। उसे यकीन हो चुका था कि यहाँ रहकर उसका बच्चा न केवल उससे दूर हो रहा है बल्कि बुद्ध भी होता जा रहा है। वह उसे एक चालाक और कामयाब बिल्ला बनाना चाहती थी। यही सब सोचकर उसने तय किया कि माऊ को यहाँ से कहीं दूर ले जाना ही बेहतर होगा।

पूसी के लिए घर से बाहर जाने के दो रास्ते थे। एक दरवाजे से गली में और दूसरा लकड़ी की नसैनी के ज़रिए दूसरी छतों से होकर। गली के दरवाजे से जाना खतरनाक तो हो सकता था लेकिन अभी माऊ नसैनी पर चढ़ना नहीं जानता था। पूसी बच्चे को अपने मुँह में दबाकर भी ले जा सकती थी। लेकिन अपने नन्हे के साथ वह ज़बरदस्ती नहीं करना चाहती थी। इसलिए उसने माऊ को नसैनी पर चढ़ना सिखाया।

पहले एक-दो सीढ़ियाँ वह खुद चढ़ती फिर माऊ को चढ़ने के लिए प्रेरित करती। माऊ पहले तो एक-दो बार फिसला और गिरा भी पर अन्त में वह नसैनी से छत पर पहुँच गया।



“अब हम एक अच्छी और महफूज़ जगह पर चलते हैं। मैं जानती हूँ वहाँ हमें खूब सारा मक्खन और मलाई वाला दूध मिलेगा,” पूसी बोली।

“अच्छा! तो माँ ने मुझे इसलिए छत पर चढ़ना सिखाया है।” माऊ ताड़ गया और माँ से बोला, “हमारे लिए यही जगह बेहतर है माँ।”

“लेकिन मैं ऐसा नहीं मानती बच्चे,” पूसी ने बेटे को समझाना चाहा।

“मैं कहीं नहीं जाऊँगा,” माऊ गुस्से से बोला, “तुमने मुझे बहला-फुसलाकर चढ़ाया है पर मैं उत्तर भी सकता हूँ आसानी से।” यह कहकर माऊ उत्तरने भी लगा।

“मैं अकेली ही चली जाऊँगी,” पूसी ने बेटे को चेतावनी दी। “मैं जा रही हूँ माऊ। किसी भी खतरे के लिए मुझे दोष मत देना और मेरी याद आए तो भी...”

“अच्छा माँ,” माऊ ने माँ की बातों की अनदेखी करके कहा, “मैं यहाँ खूब मज़े में रहूँगा।” पूसी ने दुखी मन से बेटे को देखा। वह कुछ जानता-समझता नहीं और मानता भी नहीं है। वह अपने आपको जितना काबिल समझता है उतना है नहीं। खैर, उसे अब माँ की ज़रूरत नहीं है। नहीं तो क्या माँ को छोड़कर यहाँ रहना पसन्द करता? वह खुश रहे बस... यही सोचकर पूसी चली गई।

“जाने दो पूसी को,” गुल्लू, मनू और छनू ने खुश होकर कहा। मिनी ने माऊ को गोद में उठा लिया। बोली, “दूध पिला-पिलाकर इसे खूब मोटा-तगड़ा बिल्ला बनाएँगे।”

दिन भर माऊ खूब आजादी से उछला-कूदा। रसोई से कमरे तक



कितनी ही छलाँगें लगाई। खूब शारारतें कीं। माँ तो बेवजह कटी-कटी-सी रहती थी हर वक्त। दूध पीने में कितनी नसीहतें देती थी कि पानी मिला दूध मत पीना... कि किसी के पीछे दुम हिलाते हुए मत घूमना। एक बार पानी मिला पतला दूध पी लिया तो रोज़ वैसा ही मिलेगा...।

माँ पतले दूध को देखते ही छोड़ देती थी, सूँघती तक नहीं थी। माऊ का मन होता कि चप-चप करके सारा दूध पी जाए। हर वक्त गाढ़ा और मलाई वाला दूध तो नहीं मिल सकता न? माऊ को हर समय कुछ न कुछ खाते रहना अच्छा लगता इसलिए वह कभी गुल्लू के साथ, कभी नानी के, तो कभी टॉमी के साथ खाने में शामिल हो जाता था। माँ की हर बात में शक करने की आदत अच्छी थोड़े ही है? आजादी पाकर माऊ खुश था।

लेकिन शाम होते-होते माऊ को कुछ खाली-खाली-सा लगने लगा। उसे लगा कि वह जी भरकर खेल चुका है, जी भरकर खा-पी चुका है और जी भरकर ऊधमबाजी कर चुका है। करने को कुछ भी नहीं बचा। अब करे तो क्या करे?

अब न उसे मिनी को डराने में मजा आ रहा था, न नानी को छकाने में। न अब गुल्लू की छेड़छाड़ में जान थी, न टॉमी की बातों में। वह उदास-सा कभी अन्दर आए तो कभी बाहर जाए। “इसे शायद माँ की याद आ रही है... अभी छोटा ही तो है,” नानी बोली।

माऊ को लगा कि सचमुच वह अभी छोटा है। उसे माँ की ज़रूरत है। माँ को उसे छोड़कर नहीं जाना चाहिए था। लेकिन उसने भी तो माँ को जाने दिया था चुपचाप। अब उसे बस माँ चाहिए सिर्फ माँ। “माँSS” वह बेचैनी से चिल्लाया। उसे लगा कि माँ यहाँ से नहीं सुन सकती इसलिए छत पर चढ़कर चिल्लाया, “माँSS!”

“माऊSS...मेरे बच्चे...,” कहीं से पूसी भी चिल्लाई। “मैं आ रही हूँ... मैं जानती थी कि मेरा बच्चा मुझे याद करेगा। उसे अभी मेरी ज़रूरत है,” पूसी ने माऊ के पास आते-आते बड़े प्यार से सोचा।

“आओ, नीचे चलें, गुल्लू के पास,” पूसी ने बच्चे को प्यार करते हुए कहा। माऊ ने हैरान होकर माँ की ओर देखा। “हाँ, हमें सचमुच कहीं और जाने की ज़रूरत नहीं। यहाँ यह सब लोग हमारा खयाल रखते हैं,” पूसी बोली। अब पूसी और उसका बच्चा पहले से ज्यादा खुश थे।



“अम्माहाँSSS...,” गबरु चिल्लाता है।

आठ दिन का गबरु। मुलायम, सफेद, रोएँदार, नाज़ुक शरीर! काली-काली भोली आँखें, बहुत ही चंचल। ज़रा खँटे से छूटा कि चौकड़ियाँ भरने लगता है। इस समय गबरु उदास खड़ा है। जैसे ही कोई बात याद आती है अचानक रम्भाने लगता है।

सुबह ही उसे माँ का दूध पीने को मिला था। भरपेट पीने भी कहाँ दिया था। दूध की धार ज़रा ही तेज़ जाने लगी थी कि रस्सी खींच ली गई। बाद में दूध निकाल लेने के बाद छोड़ा गया तब रखा ही क्या था! माँ के साथ थोड़ा खेल भी न पाया था कि माँ को छोड़ दिया गया। माँ चली गई। अब शाम के धुँधलके में लौटेगी तब तक गबरु क्या करे? वह मुँह उठाकर चिल्लाता है, “अम्माहाँSSS...!”

सरल जैसे ही गबर्ल की रस्सी खोलता है, वह हाथ से छूटता-सा आँगन में चौकड़ियाँ भरता है। सरल पीछे दौड़ता है।

“ठण्ड लग रही थी मेरे बिटुआ को!” अम्मा उसका मुँह हाथ से सहलाती हुई नाक से सटाकर दुलारती है। गबर्ल को यह अच्छा लगता है। कोई उससे बतियाए, उसकी पीठ और गर्दन सहलाए, उसे अच्छा लगता है। मनके जैसी आँखों को इधर-उधर ढुलकाएगा, कान हिलाएगा, कन्धे पर अपना मुँह टिका देगा, जैसे सब समझ रहा है।

छुन्नू हुलसकर कहता है, “अम्मा, तुमने गबर्ल को काजल लगाया है न?”

“नहीं तो।”

“वाह, लगाया कैछे नहीं है। देखो तो इछकी आँखें कितनी छुन्दल हैं काली-काली...।”

“नटखट,” अम्मा हँसकर छुन्नू के गाल पर चपत लगाती है।

“यहीं गबर्ल के पास खेलना।”

छुन्नू गबर्ल के पास बैठा उसके कान, मुँह, पैर छूकर देखता है, उसकी पीठ सहलाता है। उससे बात करता है। फिर थोड़ी देर बाद चला जाता है।

गबर्ल फिर अकेला रह जाता है। अब वह क्या करे? शाम न जाने कब होगी? माँ कब आएगी? वह कुछ देर इधर-उधर देखता है, फिर नरम-सी धूप में उसका मन सोने को होता है। पैरों को आहिस्ता से मोड़कर बैठ जाता है। मुँह घुटनों पर रखकर सो जाता है।

बीच-बीच में किसी आहट या मक्खी के कारण कान हिलाता है, आँखें खोलता है।



थोड़ी देर बाद ही उसे लगता है कि वह बहुत सो लिया, शायद माँ आने वाली होगी। वह अचकचाकर खड़ा हो जाता है, “अम्माहाँSSS...”

“अम्मा। देखो गबर्ल फिल चिल्लाया।”

“अब उसे धूप लग रही होगी। ला भीतर बाँध देती हूँ,” अम्मा उसे अन्दर लाकर बाँध देती है। उसे पानी पिलाती है।

गबर्ल को पानी अच्छा नहीं लगता। वह माँ का दूध पीना चाहता है। पर दिन है कि ढलता ही नहीं। वह फिर रस्माता है, “अम्माहाँSSS...”

“अब क्या है?” अम्मा फिर उसे दुलारती है और थोड़ी देर उसे खुला छोड़ देती है। आजादी पाकर वह थोड़ा खुश होता है। आँगन में, द्वार पर, गली में चौकड़ी भरता है। कोई चीज़ दिखती है, उसे सूँघता है। फिर अचानक उछलता है।

लेकिन थोड़ी ही देर में गबर्ल फिर ऊब जाता है। अब क्या करे? समय रक्ती-रक्ती सरक रहा है। कब शाम होगी? माँ कब आएगी? कब दूध पीने को मिलेगा? वह थककर हारा हुआ-सा बैठ जाता है।

अभी थोड़ी देर पहले छुन्नू महाशय अपनी मित्रमण्डली को लेकर आए थे। अपने गबर्ल को दिखाने। बच्चे बड़े कौतूहल से उस नन्हे बछड़े को देखते रहे। कान कैसे मुलायम हैं, पूँछ तो अभी छोटी है। सींग अभी नहीं हैं, यहाँ उर्गेंगे कानों के ऊपर... आहा, माथे पर लाल चन्दक कैसा सुन्दर है?

“अच्छा है न हमाला गबर्ल?”

“हाँ, बहुत अच्छा है... बहुत ही प्यारा...,” सब बच्चे बोले। पर गबर्ल को यह सब ज़रा नहीं सुहाता। कभी कान पकड़ेंगे तो कभी पूँछ तो कभी मुँह खोलेंगे। वह उठ खड़ा होता है। भागना चाहता है पर पैर रस्सी में उलझ जाता है।



“अम्माहाँSSS...”

“अरे राम !” अम्मा आकर सारे बच्चों को डाँटती है, “क्यों तंग करते हो उसे... दूर से ही देखो । बेटा, वह अभी छोटा है । उरता है न ।...” अम्मा उसकी पीठ सहलाती है । वह अम्मा के कन्धे पर मुँह टिका देता है मानो शिकायत कर रहा हो, “और कब तक इन्तज़ार करना होगा ? आखिर माँ कब आएगी ?”

और गबरु के इन्तज़ार में धीरे-धीरे दिन ढलने लगा, सूरज पहाड़ी के पीछे सरकने लगा । आकाश में चिड़िया और कौवे उड़ते आ रहे थे । मुण्डेर पर बैठी चिड़िया की तरह धूप भी जैसे कहीं उड़ गई । खेतों से लौटते हुए बैलों की घण्टियाँ बजने लगीं ।

गबरु को विश्वास हो चला है कि अब माँ ज़रूर आ रही है । वह रस्सी को झटका देते हुए कई बार रम्भाता है, “अम्माहाँSSS...”

“वो देखो हमाली गैया आ गई । कितनी जल्दी-जल्दी आ लही है ?” छुन्नू सूचना देता है ।

गाय दूर से ही रम्भाती है । गबरु माँ की नकल करता है, “अम्माहाँSSS...”

“सरूप, गबरु को खोल दे । मैं दूध का बरतन लाती हूँ ।”

सरूप जैसे ही गबरु को खोलता है, गबरु उत्साह और वेग से उछलता हुआ माँ की ओर दौड़ता है । गाय हूकती है । वह उतावला-सा लपककर पेट के नीचे पिछली टाँगों में मुँह देता है । हड्डब़ाहट में उसे पहले तो थन मिलते ही नहीं, फिर ढूँढ़कर दूध पीने लगता है । पूँछ हिला-हिलाकर... मुँह उछाल-उछालकर । गाय उसकी पीठ चाटती है । छुन्नू ताली बजाता है ।



लड़ाकू



उस दिन सुबह से ही तिनकू का मिजाज बिगड़ा हुआ था । रोज़ की तरह न उसने अपने मालिक की सीटी का जवाब दिया, न भिन्नी से कोई बात की । कटोरी में रखे काजू के टुकड़े भी उसने खाए नहीं । पिंजरे में बिखरा दिए और गर्दन फुलाए चुपचाप दूर मैदान में देखता रहा ।

तिनकू एक लड़ाकू और बहादुर तीतर था । तीतरों की लड़ाइयों में उसने कई बार शानदार जीत हासिल की थी । जब वह ज़मीन से दो-दो फीट उछलकर अपने विरोधी पर वार करता था तो उसकी फुर्ती और जोश देखते ही बनता था ।

भिन्नी उसकी हमउम्र दोस्त थी जो उसी पिंजरे के दूसरे हिस्से में रहती थी । दोनों के बीच एक जालीदार दीवार थी, पर वे एक-दूसरे का हाल-चाल बखूबी पूछ सकते थे । भिन्नी लड़ाई के समय तिनकू का उत्साह बढ़ाती थी, चीख-चीखकर उसका जोश बनाए रखती थी ।

इन दोनों को मनोरी तभी ले आया था जब ये ठीक से उड़ना भी नहीं सीखे थे । मनोरी एक नामी तीतरबाज़ था । तीतरों को पालना, उन्हें लड़ाई के लिए प्रशिक्षित करवाना उसका शौक ही नहीं धन्धा भी था । अपने बच्चों के लिए भले ही वह रुखा-सूखा भोजन जुटा पाता था पर तीतरों को काजू-बादाम चुगाता था । यही कारण था कि तिनकू भी बहुत जल्दी बड़ा और सेहतमन्द हो गया था ।

मनोरी अपने इस तीतर को बहुत चाहता था क्योंकि इसने कई मुकाबले जीतकर अपने मालिक को अच्छी-खासी रकम भी दिलवाई थी



और नाम भी। कहीं भी तीतरों का मुकाबला होता, मनोरी को ज़रूर बुलवाया जाता था।

“आज इसे क्या हो गया?” मनोरी सोच रहा था क्योंकि तिनकू मालिक की सीटी का जवाब नहीं दे रहा था। चाहे मनोरी दस बार सीटी बजाता, वह दस बार ही उसी लय के साथ चहककर बोल उठता था। मनोरी की चिन्ता का कारण यह भी था कि उसी दिन तीतरों का बड़ा मुकाबला होने वाला था जिसे जीतने की उसकी बड़ी लालसा थी। तिनकू के तेवर देखकर वह हैरान भी था और परेशान भी।

“ऐसा बरताव तो मैंने कभी नहीं देखा तुम्हारा,” मिन्नी भी अपने दोस्त की नाराज़गी का कारण जानने के लिए बेचैन थी। वास्तव में उसे मनोरी का भी ख्याल था। जिसने उन्हें अपने बच्चों की तरह पाला था। इसे वह हमेशा याद रखती थी और चाहती थी कि वह हर मुकाबला जीते।

“पर अब तुम्हें यही बरताव देखना होगा,” तिनकू ने बेमन से जवाब दिया। “क्योंकि अब मैं अपनी मर्जी से रहना पसन्द करूँगा।” मिन्नी ने हैरानी के साथ तिनकू की बातें सुनीं। वह खोया हुआ-सा कह रहा था, “यह बेवजह की लड़ाई... बिना दुश्मनी के ही टकराना... लहूलुहान करना और होना... पिंजरे में बन्द रहकर दूसरों के इशारों पर चलना... क्या यह सब ज्यादती नहीं है?”

“पर ये मुकाबले तो न दुश्मनी के होते हैं न किसी दबाव के,” मिन्नी ने उसे समझाते हुए कहा। “दुनिया में मुकेबाज़ी, तलवारबाज़ी, कुश्ती आदि कितने ही खेल इसी तरह के होते हैं... किसी भी खिलाड़ी के लिए अपनी

ताकत और महारत दिखाने का अच्छा मौका भी।”

“फिलहाल मुझसे मुकाबलों की बात न करो तो अच्छा है,” तिनकू ने नाराज़गी से कहा तो मिन्नी चुप हो गई।

“कोई बात नहीं, आज हम मुकाबले को केवल देखने के लिए बाड़े में जाएँगे,” मनोरी ने कहा।

बल्लू का बाड़ा तीतरों की लड़ाई का बढ़िया अखाड़ा था। उस दिन भी वह दर्शकों से ठसाठस भरा था। मनोरी मुकाबले में भाग नहीं ले रहा, यह जानकर दूसरे तीतरबाज़ों ने राहत की साँस ली क्योंकि अब उनकी जीत की उम्मीद बढ़ गई थी। एक ने तो यह भी कह दिया कि मनोरी लड़ाई में भाग लेता तो भी उसे हारना ही पड़ता क्योंकि उसके तीतर में अब वैसी बात है ही नहीं।

यह सुनकर मनोरी तो कुछ नहीं बोला पर तिनकू के पंजों में हलचल-सी मच गई। बेचैनी से उसने पंख फड़फड़ाए। पिंजरे की तली में पंजे रगड़े।

तभी रेफरी की सीटी बजी और दो तीतर मैदान में उतारे गए। उनका जोश बढ़ाने के लिए उनके मालिक सीटियाँ बजाने लगे, हाँक लगाने लगे। कुछ रुमाल हिला-हिलाकर उन्हें उकसाने लगे और वे उछल-उछलकर एक-दूसरे पर चोंच से वार करने लगे। अब तिनकू को पिंजरे में चुप बैठना मुश्किल लगने लगा और वह ज़ोर-ज़ोर से चीखकर बाहर निकलने के लिए बेचैन होने लगा।

“यह क्या! तुम मुकाबले के लिए तैयार हो?”
मिन्नी खुशी से चीखी।

“तब तुम ही जीतोगे तिनकू।” मनोरी मानो अपने तीतरों की भाषा समझ गया और खड़ा होकर चिल्लाया, “अब मेरा जवान भी तैयार है मुकाबले के लिए।”

पिंजरे से बाहर आकर तिनकू जिन तीतरों के साथ अपने विरोधी पर झटपट पड़ा था, देखकर कोई भी कह सकता था कि जीत उसी की होगी।





मुझे धूप चाहिए

एक था छोटा-सा बीज। गोल-मटोल, काला-कलूटा और बहुत कुछ काली मिर्च जैसा था वह छोटा-सा बीज। यदि तुम्हें बीजों के विषय में थोड़ी बहुत जानकारी है तो मुझे बताने की ज़रूरत नहीं कि वह पपीते का बीज था। फल खाने के बाद फेंके गए बीजों में से अलग हुआ वह बीज अनचाहे ही एक छोटी क्यारी में जा गिरा था।

‘अनचाहे’ मैंने इसलिए कहा क्योंकि उस क्यारी में कोई भी पौधा बढ़कर पेढ़ बनेगा, यह न किसी को अनुमान था न ही उम्मीद। इसकी वजह थी कि उस क्यारी में पहले से ही कई पेढ़-पौधे थे और सब बढ़ने की कोशिश में लगे थे।

इनमें एक नींबू का छोटा पेढ़ था। उसने बेसब्र बच्चे की तरह, जो हर हाल में ज्यादा से ज्यादा पाने की फिक्र में रहता है, अपनी टहनियाँ चारों

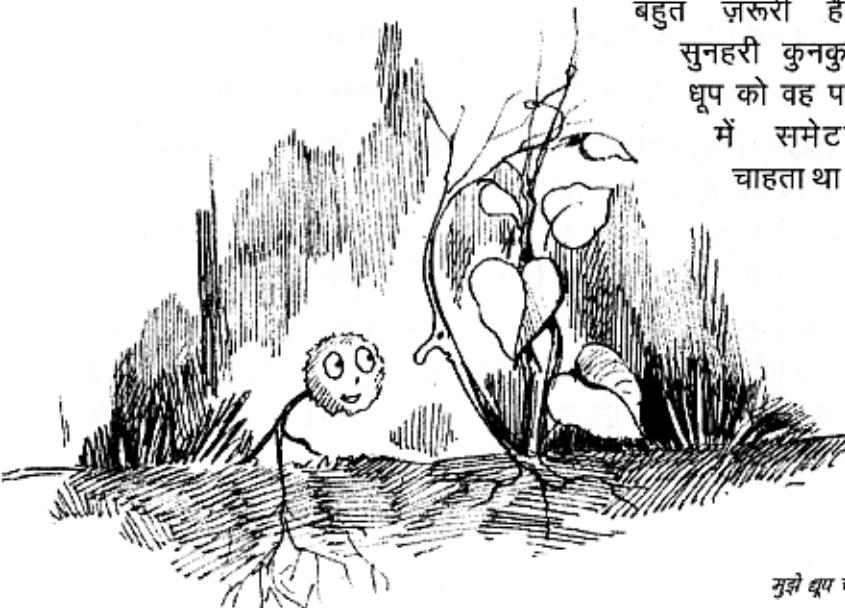
ओर फैला रखी थीं। लेकिन अब वह अंगूर की बेल से परेशान था जिसने अपने कोमल तन्तुओं से पहले तो ज़रा-सा सहारा माँगा था, पर अब हर टहनी पर कब्ज़ा जमा रही थी।

पास ही एक सन्तरे का पौधा था जिसके हौसले तो अमरुद के बराबर ऊँचे होने के थे, पर महीनों से वह जैसा का तैसा खड़ा था। उधर अमरुद के पास ही एक आम का पौधा बढ़ रहा था जो जगह न मिलने के कारण एक भी टहनी निकाले बिना सीधा बढ़ रहा था, खजूर की तरह। उसी क्यारी में लौकी की बेल ने गुलाब के पौधों को बातों में उलझाकर बढ़ने से रोक रखा था।

कुल मिलाकर क्यारी में शहर की व्यस्त सड़क पर ‘ट्रैफिक जाम’ जैसी दशा थी जिसमें सब आगे निकलना चाहते हैं पर कोई भी आसानी से और जल्दी नहीं निकल पाता। खैर... मैंने बात शुरू की थी पपीते के एक बीज से, जो ज़मीन के अन्दर की नमी और गरमाहट पाकर, मिट्टी की परत फोड़कर ऊपर आ गया था पूरा पेढ़ बनने का सपना लेकर। धूप और हवा की जगमगाती कल्पना के साथ।

लेकिन ऊपर आकर उसने कल्पना के विपरीत अपने आपको पेढ़-पौधों के घने झुरमुटों के बीच पाया। भीड़ में फँसे बिलकुल छोटे बच्चे की तरह। न खुली हवा, न पत्ते फैलाने के लिए जगह और ज्यादा बुरी बात यह कि धूप का एक टुकड़ा भी नसीब नहीं था।

“लेकिन धूप तो मेरे लिए बहुत ज़रूरी है।”
सुनहरी कुनकुनी धूप को वह पत्तों में समेटना चाहता था।



उसने ऊपर नींबू के पत्तों को देखा जो थोड़ी-सी धूप में मुस्कुराते हुए चमक रहे थे।

“ज़रा-सी धूप मुझे भी दो ना,” उस नन्हे पौधे ने नींबू के पेड़ से कहा पर नींबू के पेड़ ने जैसे उसकी बात सुनी ही नहीं। उसने अंगूर की बेल को भी सम्बोधित किया, यह सोचकर कि उसके मुलायम पत्ते कुछ तो धूप दे ही देंगे, “ए अंगूर की खूबसूरत बेल! मुझे धूप की बहुत ज़रूरत है। अपने पत्तों से छनकर कुछ धूप मुझ तक भी आने दो।”

“तुम तो एकदम बेवकूफ हो,” अंगूर की बेल ने इतराकर कहा, “भला अपने हिस्से की धूप में क्यों दूँ?”

नन्हे पौधे ने मायूस होकर छोटे-बड़े हर पौधे से, अमरुद और आम से भी धूप न मिलने की शिकायत की पर सबका जवाब एक ही था, “भला हम अपनी धूप तुम्हें क्यों दें?”

“कितने बेरहम हैं सब। काश! कोई समझ पाता कि धूप मेरे लिए कितनी ज़रूरी है,” नन्हे पौधे ने दुखी होकर सोचा।

“मेरे विचार से यों गिड़गिड़ाने से कुछ नहीं होगा,” क्यारी की गीली मिट्टी में पनपती मनीप्लांट की बेल ने नन्हे पौधे से कहा, “वैसे भी माँगने पर तो आसानी से कुछ नहीं मिलता, धूप तो बिलकुल नहीं।”

“ओह... तब तो सचमुच यह गलत जगह है मेरे लिए।”

“अब यह सब सोचने का कोई मतलब नहीं है... हाँ, एक तरीका है...”

“वो क्या?” नन्हे पौधे ने मनीप्लांट को अपनी बात पूरी करने को कहा।

“तुम खुद धूप हासिल करो... सबसे ऊपर उठने की कोशिश करो...”

कुछ मुश्किल होने के बावजूद नन्हे पौधे को यह सुझाव अच्छा लगा। उसने धूप की सुनहरी कल्पनाएँ करते हुए बढ़ना शुरू किया। जल्दी ही उसके पत्ते बड़े होने लगे। तीसरे दिन तो वो नींबू के तने को छूने की सोचने लगे और हफ्ते भर में वे नींबू की निचली टहनियों तक पहुँच गए।

“मेरी टहनियों को छूने से पहले जान लो नन्हे पौधे कि मेरे काँटे तुम्हें नुकसान पहुँचा सकते हैं। बाद में मुझे दोष मत देना,” नींबू के पेड़ ने नन्हे पौधे को सावधान करते हुए कहा। पर वास्तव में उसे नन्हे पौधे का बढ़ना अच्छा नहीं लग रहा था।

नन्हा पौधा नींबू के तेवर देखकर समझ गया कि नींबू का पेड़ उसे रास्ता नहीं देगा। इसलिए उसने अपने तने को तिरछा किया, पत्तों को ज़रा झुकाया जैसे लोग बहुत नीचे दरवाजे में से निकलने के लिए करते हैं, और फिर ज़रा खुली जगह पाकर बढ़ने लगा। उसे बार-बार लगता था कि धूप उसे बुला रही है और उसे जाना ही है। अब उसके पत्ते कुछ और बड़े और खूबसूरत हो गए थे और अंगूर की बेल के ऊपर फैल गए थे, किसी पक्षी के बड़े-बड़े डैनों की तरह।

“यह पपीते का पौधा तो अंगूर की बेल को पनपने ही नहीं देगा,” यह कहते हुए किसी ने उसके तीन पत्ते डण्ठल सहित उखाड़ डाले।

“मेरी परवाह किसी को नहीं है,” नन्हे पौधे ने सोचा। पर उसने खुद को समझा भी लिया, “अच्छा है, इससे तो बढ़ने में ज्यादा आसानी होगी।”

और इस तरह पपीते का पौधा, जिसे अब नन्हा कहना तो नासमझी होगी, हर रुकावट को पार करता, क्यारी के पेड़-पौधों को पीछे छोड़ता बढ़ता रहा। क्यारी के पेड़-पौधों में उसके बारे में चर्चाएँ होती रहतीं कि “आज उसके दो और नए पत्ते निकल आए, कि अब उसने नींबू को पूरी तरह ढाँक लिया, कि अब तो वह आम को छूने की कोशिश कर रहा है, कि अरे अब तो वह सबसे ऊँचा हो गया... उसके पत्ते कितने बड़े हैं, बिलकुल छतरी जैसे...।”

“इस पेड़ ने तो सचमुच कमाल कर दिया,” चिड़ियाएँ भी चहचहाती हुई यही कह रही थीं।

“इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं,” मनीप्लांट ने कहा। “मुझे तो यकीन था, क्योंकि वह धूप के लिए इतना उत्सुक जो था।”

लेकिन मनीप्लांट की यह बात पपीते के तने तक ही पहुँच सकी। उसके बड़े और खूबसूरत पत्ते तो इतने ऊँचे, धूप से बार्ते कर रहे थे कि उन तक मनीप्लांट की बात पहुँच ही नहीं सकती थी।



मीकू फँसा पिंजरे में

बाहर निकलने की तमाम कोशिशें बेकार थीं। मीकू को विश्वास हो गया कि इस बार वह घर के लोगों की चाल में फँस गया है। पहले भी लोग उसे पकड़ने के कई तरीके आज्ञामाते रहे थे पर वह साफ बच निकलता था। लेकिन इस बार वह फँस चुका था और अकेला वही नहीं उसके लगभग तीन-चौथाई दर्जन साथी भी फँसे थे जो बाहर निकलने की पुरज़ोर कोशिश कर रहे थे।

दाँ-बाँ, आगे-पीछे, जिधर देखो उधर मज़बूत तारों का ऐसा जाल था जिस पर मीकू के दाँतों का कोई असर नहीं होता था। अपने दाँतों पर तो मीकू को बड़ा गर्व था। कपड़े से लेकर लकड़ी तक कोई भी चीज़ उससे बच नहीं पाती थी। एक बार उसने किवाड़ का एक पूरा कोना रातोंरात कुतर

डाला था क्योंकि किवाड़ों से उसका राशन लाने का रास्ता बन्द हो जाता था। सारी रात

“कटर-कटर” होती रही पर कोई “हट्ट-हुश्शा” करने के अलावा कुछ नहीं कर पाया। सुबह किवाड़ों के बीच सबने बड़ा-सा सुराख बना देखा।

मीकू याद करता है कि उसने अब तक बड़ा रोबदार और सम्मान भरा जीवन बिताया था। वह सबका बॉस था क्योंकि सबसे मोटा तगड़ा और ताकतवर चूहा



वही था और बुद्धिमान भी। ऐसे कई अवसर आए जब अपनी सूझबूझ से वह सभी साथियों को बचा ले गया था इसलिए सब उसकी बात मानते थे। न मानने पर मीकू किसी को भी दबोचकर अधमरा कर सकता था।

घर के लोगों में भी उसका खौफ कम न था। सब उसकी चालाकी और आतंक का लोहा मानते थे। रीतू तो उससे बहुत ज्यादा डरती थी। अकेली कभी रसोईघर या भण्डारघर में नहीं जाती थी। काली रस्सी जैसी उसकी पूँछ ही उसे डराने के लिए काफी थी। एक बार ताक से आले में छलाँग लगाते समय वह रीतू के सिर पर गिर पड़ा और बालों में उलझकर बदहवास-सा भागा, कभी गर्दन की ओर तो कभी कानों की ओर। जब तक वह ओझल होता रीतू की चीखें रोने में बदल गई थीं। वह उसे अब तक ‘मोटा भैंसा’ कहती है।

अम्मा भी मीकू से तंग रहती थी। उनकी कोठरी में मीकू खूब धमा-चौकड़ी मचाता था। रात में सोती हुई अम्मा के ऊपर से कई बार गुज़रता

था। अम्मा लाठी ठकठकाती हुई चिल्लातीं, “अरे गोलू कल इस ‘सॉड’ के लिए पिंजरा ले आना।”

गोलू मीकू से खासा चिढ़ा हुआ था क्योंकि चूहे पकड़ने में उसकी सारी चतुराई और होशियारी मीकू के मामले में बेकार साबित हो गई थी।

एक हाथ में डण्डा और दूसरे में कपड़ा लिए, एक दरवाजे पर माँ को और नाली पर भाई को तैनात किए घण्टों बीत जाते। कभी सन्दूक को पीटते, कभी कनस्तर को खटखटाते तो कभी अलमारी के पीछे ठकठकाते। मीकू आराम से किसी डिब्बे के पीछे बैठा सबकी परेशानी का आनन्द लेता रहता था और अचानक लम्बी छलाँग लगाकर इस तरह भाग जाता कि सब बस ‘उई’ करके रह जाते थे।

लेकिन अब वही मीकू असहाय-सा पिंजरे में बन्द हो गया था। कहाँ यह कैद और कहाँ वह मस्ती, धमा-चौकड़ी। चाहे रोटियों का डिब्बा हो, सब्जियों की डलिया हो, अनाज की बोरियाँ हो, कपड़ों की अलमारी हो या किताबों की पेटी, कुछ भी उसकी पहुँच से बाहर न था। सुबह जब गोलू की माँ को रोटियाँ नाली में खोंसी मिलतीं और कुतरे आलू-टमाटर पूजाघर में, और गोलू की बनियान बिल में टूँसी हुई मिलती तो वे बङ्गवड़ातीं, “पूसी को तेरा कलेवा न कराया मुटल्ले तो...”

पूसी को भी कम नहीं छकाया है मीकू ने। रात में जान-बूझकर पूसी के लिए कमरे खोल दिए जाते थे। पूसी रात भर बरतन-डिब्बे पटकती-गिराती थक जाती थी पर मीकू को कभी अपना ग्रास नहीं बना पाई।

लेकिन अब... मीकू ने अफसोस किया कि बाबा ने उसे बचने के तमाम तरीके बताए थे पर यहाँ कोई काम नहीं आया। यह कोई नया तरीका न था चूहों को फँसाने का जिसे बाबा नहीं जानते थे। उन्होंने उस जाल का ज़िक्र तो कई बार किया था जिसे कबूतर लाए थे। बाबा ने जाल को काटकर अपनी होशियारी का और दोस्ती का फर्ज़ निभाया था। मीकू के बाबा बहादुर थे। उन्होंने ‘वनराज’ को भी जाल से आज्ञाद कराया था। आज भी बाबा की यह कहानी किताबों में छपती है। बाबा ज़रूर इस नई तरकीब को नहीं जानते थे। रात के अँधेरे में एक स्वादिष्ट खुशबूदार दुकड़ा पड़ा था कहीं। मीकू उसे खाने के लिए बढ़ा ही था कि अचानक झुक गया और ‘खट’ की आवाज़ हुई और उसने अपने आपको कैद पाया। यही नहीं एक-एक करके उसके दूसरे साथी भी आते गए। उन्हें खतरे का अन्दाज़ा भी नहीं था शायद।

“ओ रीतू, मालू, मोनू,” मीकू ने सुना, गोलू कह रहा था, “सब लोग आओ... देखो, एक नहीं दो नहीं, पूरे दस चूहे...”

“ओ भैया इतने चूहे... कैसे एक-दूसरे की ओट में घुसे जा रहे हैं... शायद ठण्ड लग रही है,” यह गोलू की बड़ी बहन थी।

“नहीं दीदी, ये इसलिए मुँह छुपा रहे हैं कि कहीं इनका फोटो खींचकर हम अखबार में न छपवा दें...” और फिर ज़ोरदार हँसी।

“दूसरों का मज़ाक उड़ाना क्या अच्छी बात है?” मीकू बोल सकता तो यही कहता। सब उसी को लेकर मज़ाक कर रहे थे, “कहिए मोटूमल जी! क्या-क्या अण्ट-शण्ट खाते रहे हो... पर अब चिन्ता न करें। हम आपकी ‘डायटिंग’ करवा देंगे।”

गुस्से के मारे मीकू की मूँछें तन गईं। उन अशिष्ट लड़कों का कुछ नहीं बिगाड़ सकता था। कोई उसकी पूँछ खींच रहा था तो कोई लकड़ी से कोंच रहा था। गोलू ने तो पूसी को ही पिंजरे की तरफ हुड़का दिया था। मीकू काँप गया था डर के मारे। उसके कुछ साथियों के नीचे की ज़मीन गीली हो गई थी। यह कोई तरीका है सताने का?

दिन भर वे सबके लिए नुमाइश बने रहे। सब उन पर फब्बियाँ कसते रहे। किसी ने भी उनके पेट का हाल नहीं पूछा। बाबा ठीक कहते थे कि आदमी बड़ा खुदगर्ज़ होता है। अपने फायदे के लिए वह कुत्ते-बिल्ली तो क्या हाथी और शेर को भी अपना गुलाम बना लेता है और पैसा कमाता है। मीकू परेशान था। उसके साथी उससे शिकायत कर रहे थे, “मीकू भैया, यहाँ से निकलने का कोई इन्तज़ाम सोचा है या यहीं सड़कर मरने का विचार है।”

“चुप रहो,” मीकू चीखा, “तुम मुसीबत में हो तो मैं भी आराम से नहीं हूँ। मुझे सोचने दो... सुनो वे दो लड़कियाँ जो खाना खा रही हैं हमारे विषय में ही बातें कर रही हैं।”

“दीदी ये सब भूखे होंगे।”

“हाँ”

“इनको रोटी डाल दूँ?”

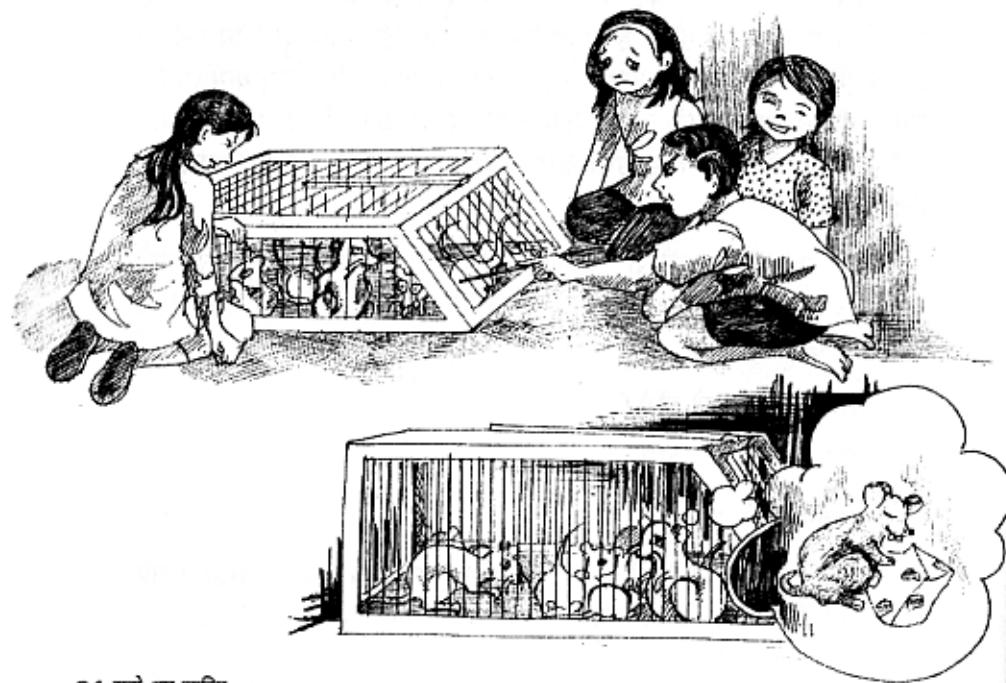
“नहीं,” बड़ी लड़की ने कहा, “तुम भूल गई कि इन्होंने तुम्हारी नई फ्रॉक काट दी थी। इनके साथ कोई भी रियायत करना बेकार है।”

मीकू ने देखा उस प्यारी नन्ही लड़की का चेहरा बुझा-सा गया है जिसका नाम मालू है और जिसकी आँखें बड़ी और नीली हैं। थोड़ी देर बाद जब उस लड़की ने फ्रॉक में छुपाकर रोटी लाकर पिंजरे में डाल दी तब मीकू का दिल भर गया।

दूसरे दिन जब गोलू अपने साथियों के साथ पिंजरा लेकर चला तो मीकू ने जीने की उम्मीद छोड़ दी क्योंकि उसने गोलू की योजना सुन ली थी। वे उन्हें पानी में डुबाकर अधमरा-सा करके उस मैदान में फेंकने वाले थे जहाँ चीलों व गिर्दों का जमावड़ा रहता है।

मौत के इतने करीब आने पर उसने अपने घर को याद किया जिसकी नकल करके आदमी ने ज़मीन के अन्दर बाजार और रेलमार्ग बना लिए हैं। सुना है सीप-घोंधों की नकल करके वह समुद्र में भी बस्तियाँ बनाएगा। चिड़ियों की तरह आसमान में तो वह उड़ता ही है। आदमी भी खूब है!

मीकू आगे नहीं सोच पाया क्योंकि उस पल वह ठण्डे पानी में डुबा दिया गया, पिंजरे सहित। पानी से तो मीकू को वैसे ही बड़ी चिढ़ थी। महीनों तक नहाता नहीं था। लेकिन अब एक बार, दो-बार... तीन, चार बार... दुष्ट लड़के बार-बार पिंजरे को पानी में डुबा रहे थे और हँस रहे थे।



“देखो कैसी भगदड़ मची है चूहों में...” लड़के कह रहे थे। मीकू सोच रहा था कि मालू होती तो शायद इन लड़कों को रोक लेती।

गोलू भी मालू के बारे में सोच रहा था। मालू को वह चूहों का तमाशा दिखाना चाहता था। मालू उसकी सबसे प्यारी बहन थी। उसके गुड़-गुड़ियों की शादी में वह दोनों हाथ-मुँह से लगाकर ‘तु-तु’ करता हुआ बैंडमास्टर ज़रूर बनता था। उसकी गुड़ियों के लिए कार भी बनाकर सजाता था। यह पिंजरा भी वह मालू के कहने पर लाया था।

मालू उस समय चुपचाप पेड़ के पास खड़ी थी।

“मालू! SSS देख कितना मज़ोदार खेल है, आ जा,” गोलू चिल्लाया। पर मालू वहाँ से नहीं आई। गोलू पिंजरा छोड़कर मालू के पास गया। देखा मालू की आँखें गीली थीं।

“मालू! क्या तुम्हें यह अच्छा नहीं लग रहा?” मालू ने ना में सिर हिलाया।

“लेकिन यह पिंजरा तो तुमने ही लाने को कहा था।”

“कहा था... लेकिन इतना सताने को थोड़े ही कहा था बेचारों को?”

“तुम तो बेकार ही दुखी हो रही हो दुष्ट चूहों के लिए,” गोलू ने हैरान होकर कहा।

मालू ने पैर पटकते हुए कहा, “मेरी बात नहीं मानते तो मैं बात नहीं करूँगी।”

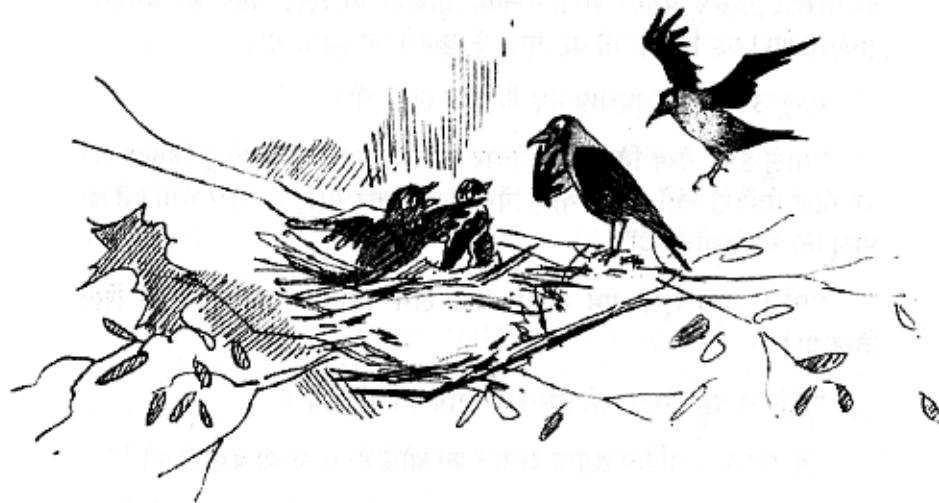
गोलू ने लपककर मालू का रास्ता रोक लिया।

“मालू रुको... अच्छा बताओ क्या करूँ? इन्हें छोड़ दूँ?” गोलू ने मालू की आँखों में झाँका। मालू मुस्कराई।

“ओ... मर गए,” गोलू ने माथा पीटा। “मुझे क्या मालूम था कि चिड़िया, मोर, बिल्ली, कुत्तों और गिलहरियों के साथ अब मालू के दोस्तों में चूहों का नाम भी जुड़ गया है।”

मालू शरमा गई। पर उसकी आँखों में चमकती खुशी किसी से छुपी न रह सकी।

कुट्टू कहाँ गया ?



“कुट्टू आखिर कहाँ चला गया?” कालू और साँवरी हैरान थे और परेशान भी।

सुबह जब दोनों दाना-दुनका और कीड़े-मकोड़े लेने गए थे तब घोंसले में चारों बच्चे मौजूद थे। लौटने पर उन्हें केवल तीन बच्चे मिले। काफी उदास और सहमे हुए। उन्हें देखते ही तीनों चिल्ला उठे, “माँ... माँ... कुट्टू पता नहीं कहाँ गया है।”

“हम तो सोने की कोशिश कर रहे थे चुपचाप।”

“और हमें छोड़कर जाने कहाँ चला गया।”

तीनों बच्चों की बातें सुनते हुए वे दोनों कितनी ही बातें सोच रहे थे।

कालू-साँवरी का घोंसला नीम की सबसे ऊँची टहनियों के झुरमुट में बना था जो आसानी से दिखाई तक नहीं देता था। बिल्ले और दूसरे दुश्मनों के वहाँ पहुँचने की तो सोचना बेकार है। वहाँ पहुँचना तो बाज़ जैसे चुस्त

और चालाक शिकारी के लिए भी उतना आसान नहीं है। इसलिए यह सोचना तो बेवकूफी होगी कि घोंसले में से कोई कुट्टू को ले गया होगा। और, कोई ले भी जाता तो बाकी तीन को क्यों छोड़ता? तो फिर कुट्टू कहाँ और कैसे चला गया?

हालाँकि कालू और साँवरी जानते थे कि बड़े होने पर बच्चों को एक दिन घोंसला छोड़कर आजादी से उड़ना ही है, पर अभी इसके लिए कुछ और समय की ज़रूरत थी। अभी तो उनके पंख छोटे और कमज़ोर थे। इनसे घोंसले में ही फड़फड़ाने का शौक तो पूरा किया जा सकता था, पर अभी यों स्वतंत्र रूप से अकेले ही उड़ जाने की बात सोचना उनके लिए कुछ मुश्किल था। इसलिए कुट्टू का यों गायब हो जाना उनके लिए अफसोस के साथ हैरानी की बात भी थी।

कालू इन्हीं विचारों में डूबा था कि बिल्लू बिल्ला वहाँ से गुज़रा। बिल्लू खासा मोटा-ताजा और बड़ा घाघ बिल्ला था। अण्डों और नन्हे बच्चों पर उसकी नीयत हमेशा बुरी रहती थी। कुट्टू के बारे में वह कई चिड़ियों से बातें करते देखा गया था।

“अगर कुट्टू उड़ने की कोशिश में नीचे गिर पड़ा होगा तो ज़रूर बिल्लू...” आगे की दुखद कल्पना से बचने के लिए उसने बिल्लू से ही कुछ इस तरह पूछा ताकि उसे शक न हो, “बिल्लू! कुट्टू आज तुम्हारे साथ था न?”

“कुट्टू!” बिल्लू आँखें चमकाकर बोला, “सुबह से मैं उसी को तलाश रहा हूँ! कहाँ है वह?”

“चलो, कुट्टू बिल्लू के हाथ तो नहीं आया।” कालू ने सोचा और पूछताछ के लिए नीम के तने के पास गया।

“नीम भाई! तुमने कुट्टू को कहाँ देखा है?”

“मैं तो सुबह से ही हवा के सुहाने झोंकों में झूम रहा हूँ कालू भैया। नन्ही से पूछकर देखो न?”

“नन्ही बहन,” कालू लपककर नन्ही गौरेया के पास पहुँचा, “कुट्टू अपने घोंसले में नहीं है... तुमने कहाँ उसे देखा?”

“घोंसले में नहीं तो ज़रूर आसमान की सैर कर रहा होगा। चिन्ता की



क्या बात है कालू भाई!” कालू नन्ही को समझा पाता कि अभी वह इस तरह उड़ने लायक नहीं है, पर वह बिना सुने फुर्ती से दूसरे पेड़ पर जा बैठी।

उधर साँवरी ननकू नेवले को अपनी व्यथा कथा सुना रही थी।

“...ज़रा पूरी बात खुलकर समझाओ।” ननकू ने कान खुजाते हुए लाल धुंधची जैसी आँखें नचाईं।

साँवरी ने सारी बात विस्तार के साथ बताई। ननकू ने दो-चार बार और पलकें झपकाई, फिर बोला, “कुट्टू बेशक वहीं होगा जहाँ इस समय उसे होना चाहिए।”

“ननकू भैया, यह मज़ाक का समय नहीं है,” साँवरी ने भरे गले से कहा। “बच्चे ने सुबह से कुछ भी नहीं खाया है। जाने कहाँ भटक रहा होगा? हो सके तो तुम...”

साँवरी अपनी बात पूरी कह पाती इससे पहले ही ननकू लकड़ी के ढेर में गायब हो गया।

सोना गिलहरी, कनसुन मुर्गी, गुलबी मैना और पिंकू फाख्ता ने भी उन्हें लगभग इसी तरह के जवाब दिए।

“हमारी बात किसी ने भी ध्यान से नहीं सुनी।” कालू और साँवरी ने दुखी मन से सोचा।

“तुम्हारी आवाज तो काफी बुलन्द है,” पास ही खड़ा गुलाब का पौधा बोला, जिसकी टहनियों पर बड़े-बड़े सुर्ख फूल खिले थे। कालू-साँवरी

उसकी बात सुनने लगे। “मेरे विचार से तुम अपने बच्चे को ज़ोर-ज़ोर से पुकारो। वह सुनेगा तो ज़रूर तुम्हारे पास लौट आएगा।”

“यह सलाह अच्छी है।” उन्होंने सोचा और दोनों बारी-बारी से पुकारने लगे, “कुट्टू! कहाँ हो मेरे बच्चे? जल्दी आ जाओ।”

“तुम्हारे बिना हमने आभी तक कुछ नहीं खाया है... मेरे बच्चे आ जाओ। हम तुमसे नाराज़ नहीं हैं।”

“कुट्टू... जल्दी आओ... कहाँ हो तुम?”

उनकी पुकार पत्ता-पत्ता सुन रहा था। सारी चिड़ियाएँ, गिलहरियाँ और वे सभी जो सुन सकते थे, सुन रहे थे और कह रहे थे, “बेचारे!”

दरअसल वह कोयल का बच्चा था जो कालू के घोंसले में कालू के बच्चों के साथ ही पला और बड़ा हुआ था। अपनी असलियत जानते ही घोंसले से निकल भागा था। गुलाब की झाड़ियों में छुपा हुआ वह आगे बच निकलने की तरकीबें सोच रहा था।

शाम आसमान से उत्तरकर धरती पर आ गई थी। आसमान में उड़ते चहकते पक्षी घोंसलों की तरफ लौटने लगे थे। पेड़ों व छतों की मुण्डरों पर शेष रहे एकाध धूप के टुकड़े को झोली में डालता अँधेरा गलियों-मैदानों में दबे पाँव उत्तरने लगा था।

कालू और साँवरी वास्तविकता से अनजान अब भी नीम की टहनी पर बैठे पुकार रहे थे, “कुट्टू! कुट्टू! तुम कहाँ हो मेरे बच्चे। हम तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं।”

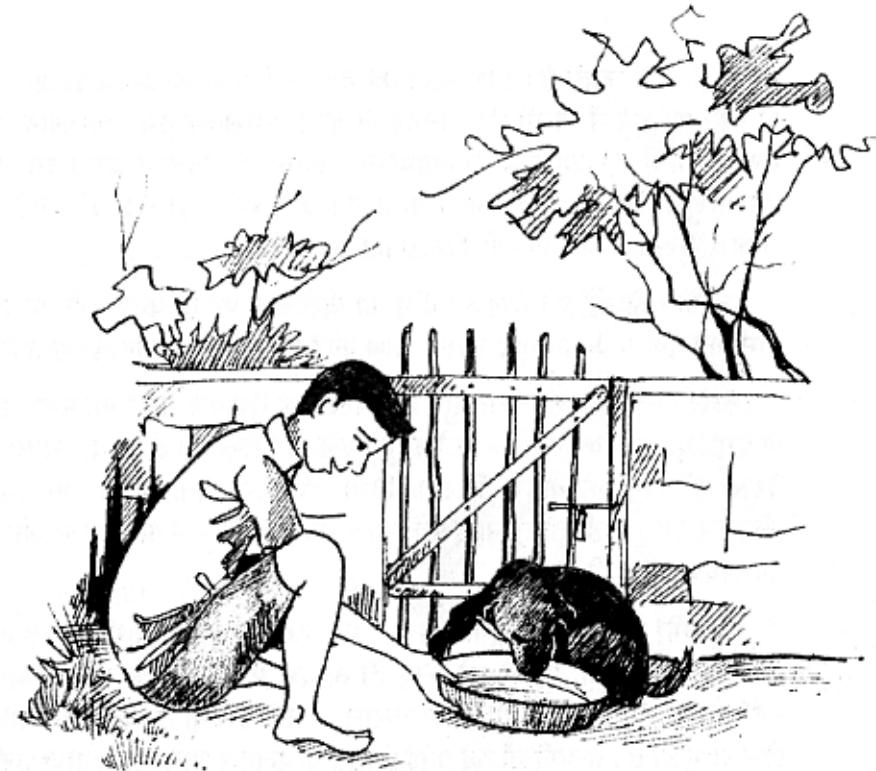
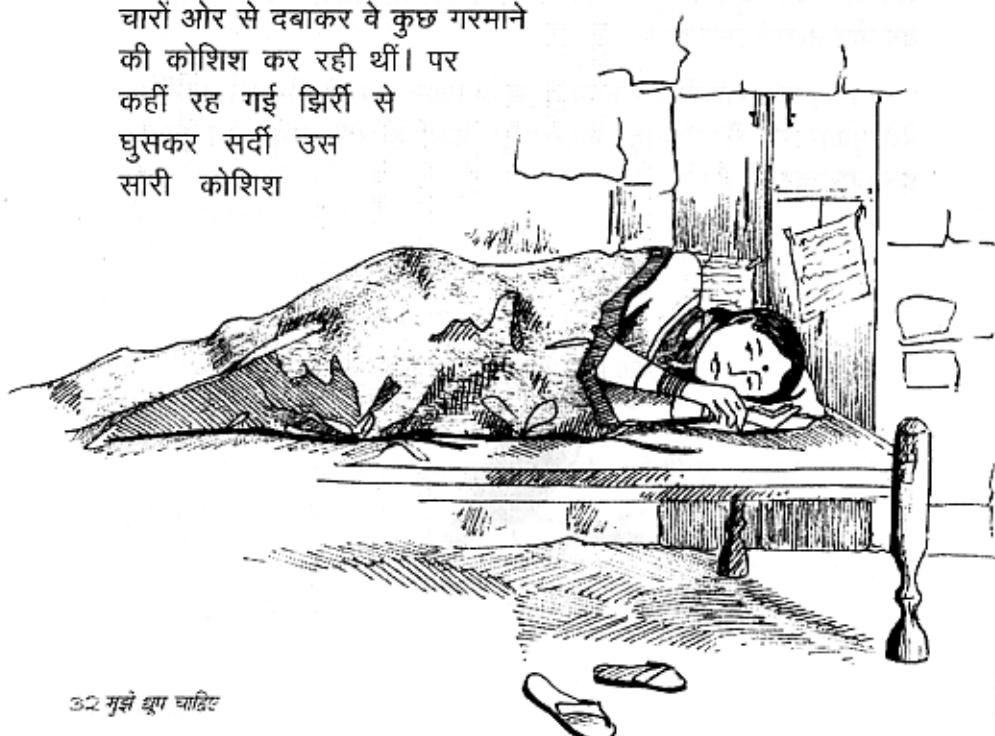


माँ

वह बहुत ही सर्द और सन्नाटे से भरी रात थी। सर्दी के आतंक से सड़कें, गलियाँ सहमी हुई और खामोश थीं। पेड़-पौधे कोहरे की चादर लपेटने के बाद भी काँप रहे थे। लॉन में यूकेलिप्ट्स के पते आँसू बहा रहे थे। यह सब देखकर मानो सितारे भी थरथरा उठे थे।

उस समय रात के लगभग साढ़े बारह बजे होंगे। लेकिन श्रीमती वर्मा अभी तक जाग रही थीं और लेट हुई ट्रेन की प्रतीक्षा करते यात्री की तरह वे बिस्तर के प्लेटफॉर्म पर लेटी थीं। नींद उड़ने का कारण कोई चिन्ता भी हो सकती थी और कड़ाके की सर्दी भी, जिसने पूरे कमरे पर कब्ज़ा कर रखा था। किवाड़ों की दरारों को भी कागज से बन्द कर दिया था और रजाई को चारों ओर से दबाकर वे कुछ गरमाने

की कोशिश कर रही थीं। पर
कहीं रह गई झिरी से
घुसकर सर्दी उस
सारी कोशिश



को नाकाम कर रही थी जैसे हवा का एक झोंका कई मोमबत्तियों को एकदम बुझा देता है।

लेकिन वास्तव में श्रीमती वर्मा की नींद उड़ने का कारण किवाड़ की दरार से आती पतली-सी आवाज थी जो क्रमशः अधिक कातर होती जा रही थी - “कूँ... कूँ... कूँ...”

“कमबख्त, फिर लौट आया शायद,” श्रीमती वर्मा कुद्दते हुए पिल्ले के बारे में सोच रही थीं। “खुद इतनी दूर छोड़कर आई थी। फिर भी लौटकर आ गया मरा। क्या इस तरह सूँघ-सूँघकर ही घर को तलाश लेता है?... यह सारी करामात दीपू की है।”

दीपू श्रीमती वर्मा यानी शोभा देवी का भानजा है। बड़ी ननद ने उसे पढ़ने के लिए भैया के यहाँ भेज दिया है। यह बात केवल शोभा देवी जानती हैं कि दीपू का मन पढ़ाई से ज्यादा कुत्ते-बिल्ली के बच्चों से खेलने, गिलहरियों को मूँगफली के दाने खिलाने और बुलबुल के बच्चों को निहारने में लगता है। यही वजह है कि दोस्त के यहाँ पढ़ने के बहाने सक्सेना जी के

बगीचे में चला जाता है। शोभा देवी को दीपु के इस शौक से ज्यादा आपत्ति तो नहीं पर घर में किसी भी जानवर के बच्चे, खासकर कुत्तों को लाने की सख्त मनाही है। वह बड़ी सफाईपसन्द महिला हैं। उनका छोटा-सा घर हमेशा धुला-निखरा देखा जा सकता है। वहाँ मक्खियाँ तक तो आने में संकोच करती हैं फिर पिल्लों-बिल्लों का क्या काम!

लेकिन पिल्लों को देखकर दीपु का जैसे खुद पर ही काबू नहीं रहता। मामी की वर्जना के बावजूद उसके साथ कोई पिल्ला अक्सर दिख जाता है।

उस दिन भी, यह जानते हुए कि पिल्ले को देखकर मामी का पारा चढ़ जाएगा, वह एक काले गोल-मटोल गुलफुले-से पिल्ले को ले आया। मामी ने देखते ही दीपु को बाहर ही रोक दिया, “अन्दर आना है तो इसे कहीं छोड़कर आ... नहीं तो तू भी इसके साथ बाहर गलियों में भटक। मैं जीजी को खबर भेज दूँगी।”

“मामी! मेरी बात तो सुनो प्लीज़,” गज़ब का ढीठ है दीपु भी। डरने की एकिंग करता हुआ पिल्ले को लिए ही अन्दर आ गया। “मैं तुम्हें नाराज़ नहीं करना चाहता था मामी विद्या-कसम... लेकिन क्या है कि बेचारा तीन दिन से भूखा है। इसकी माँ को कोई बेरहम कुचलकर भाग गया। रोज़ उसी जगह पर बैठा रहता था। सच्ची मामी इसे अभी छोड़ आऊँगा। बस ज़रा-सा दूध दे दो!”

दीपु को यों मासूमियत के साथ रिरियाता देखकर शोभा देवी ने आधी कटोरी दूध दे दिया पर तुरन्त ही उसे छोड़ आने के लिए चेतावनी भी दी।

“लपक गया तो जाने का नाम नहीं लेगा। देखो ना दूध कैसे पी गया लप-लप करके,” शोभा देवी बुद्बुदाती रही। दीपु उसे छोड़ आया तो उन्होंने चैन की साँस ली। लेकिन शाम को देखा कि वही पिल्ला चौखट पार कर अन्दर आ रहा है।

“दीपु की चालबाज़ी खूब समझती हूँ। यहीं कहीं छोड़ आया होगा जानकर। सुनोजी! इस बार तुम कहीं दूर छोड़ आओ।” शोभा देवी ने अब अपने पति को तैनात किया।

लेकिन दो दिन बाद वह पिल्ला फिर दरवाज़े के अन्दर आँगन तक आ गया। शोभा

देवी ने पहले तो उसे पैर से दूर धकेला। मारे गुस्से के उसे खूब कोसा और फिर दीपु को लेकर काफी दूर तक नाले के किनारे पिल्ले को छुड़वा आई।

दो-तीन दिन तक पिल्ला नहीं आया तो उन्हें यकीन हो गया कि इतनी दूर से वह लौटकर नहीं आएगा।

“लेकिन मैं तो आ गया।” बाहर से लगातार आ रही कूँ-कूँ की आवाज़ जैसे शोभा देवी को यहीं जता रही थी।

“आ गया तो मर...,” शोभा देवी ने अपने आपको मुक्त करके सोचा। बाहर से पिल्ले की कातर आवाज़ बराबर आ रही थी। दीपु और उसके मामा गहरी नींद में थे पर शोभा देवी को लग रहा था कि रजाई के अन्दर भी हाथ-पाँव जमे जा रहे हैं। सिकुड़ती हुई सोच रही थीं, “कमरे में, रजाई के भीतर जब यह हाल है तो बाहर...? कहीं पिल्ला ठिठुरकर मर-मरा न जाए।”

इस विचार के साथ शोभा देवी रजाई में लेटी न रह सकी। किवाड़ खोलकर बाहर आई। देखा कि पिल्ला दीवार से चिपका काँप रहा था। मानो दीवार फोड़कर अन्दर छुप जाना चाहता हो। उसका कूँकना भी अब धीमा हो गया था, जैसे बहुत रो लेने के बाद बच्चा निढ़ाल हो जाता है।

शोभा देवी ने पिल्ले को काँपते हुए हाथों से उठाया और शॉल में लपेट लिया। वे खुद नहीं समझ पाई कि उन्होंने कैसे उसे अन्दर लाकर अपने साथ अन्दर रजाई में सुला लिया। थोड़ी देर बाद ही उन्हें लगा कि नहीं-सी धड़कनों से उसका नन्हा शरीर हिल रहा था। हल्की-सी धुरधुराहट उसकी राहत भरी गहरी नींद को ज़ाहिर कर रही थी। जैसे उनके पास नन्हा शिशु सो रहा हो... मासूम... अबोध...।

अब शोभा देवी को नींद आने लगी थी।



भैया का दोस्त



वह भैया का अजीब दोस्त था। यों तो भैया के दूसरे कई दोस्त थे जिनका मुझे नाम ही नहीं सूरत, गुण और स्वभाव सब कुछ मालूम था। पर वह नया दोस्त हम सबकी समझ से बाहर था। काफी बड़ा डील-डौल, बड़े-बड़े बाल, स्थाह काला रंग, लम्बे कान, पल-पल झपकती-सी निरीह आँखें, झबरीली पूँछ, गन्दा-सा शरीर...। लेकिन भैया को वह प्यारा था, सबसे प्यारा दोस्त। भैया उसे 'बीसा' कहते थे और मैं उसे 'ढोंगी'।

"हाँ, हाँ, ढोंगी नहीं तो क्या? भैया को देखकर पूँछ हिलाने लगता है और पीछे ऐसी अकड़ दिखाता है जैसे शेर हो। भैया की आहट हो या रोटी की गन्ध, 'बेचारा' बन जाता है पेटू, ढोंगी!"

"अरे जा," भैया मेरी बात सुनकर चिक जाते। "तेरी रोटियों को सूँघता भी नहीं मेरा बीसा। वह तो प्रेम का भूखा है बस!"

"प्रेम का भूखा है," मैं भैया की नकल उत्तारकर कहती। "रोटी नहीं खाता क्या हमारे घर?"

"बड़ी आई 'घर' वाली। तेरा ही घर है न जो धौंस जमाती है।"

भैया उसे बहुत चाहते थे। उतना ही जितनी मुझे उससे नफरत थी। उनकी दोस्ती का आरम्भ कब हुआ यह तो बताना कठिन है। पर मेरा ध्यान तब गया जब मैंने रोटियों का डिब्बा चाहे जब खाली होता पाया। एक दिन मैंने भैया को बगल में कुछ दबाकर ले जाते देखा तो पकड़ लिया। कागज में चार ठण्डी रोटियाँ थीं। अक्सर रात की बची रोटियाँ हम कजरी को खिलाते थे पर अब तो कजरी के लिए कुछ बचता ही नहीं था।

"भैया, ये रोटियाँ? किसके लिए?"

"वो... वो... बीनू... चिड़िया... नहीं-नहीं मछलियाँ हैं न, बड़े चाव से रोटियाँ खाती हैं। तू खुद देखना, सीप-सी चमकती हैं," भैया सकपकाकर बोले।

"रोटियाँ? मछलियों के लिए? मुझे तो नहीं लगता।" मैंने जासूसी वाले अन्दाज में कहा तो वे मुझे हटाते हुए बोले, "तो तुझे जो लगता है वही सही... तू कोई वकील है या जज है मेरी...?"

मैं भी पीछे न रही। धीरे-धीरे पता लगा ही लिया कि जनाब इतनी सारी रोटियाँ एक कुत्ते को खिलाते हैं। मुझे भैया की शिकायत करने का अच्छा

मौका मिल गया। बात यह थी कि हम सभी को कुत्तों से बहुत नफरत थी। कुत्ते हमें गन्दगी और बीमारी का घर लगते थे। पिल्ले ज़रूर मुझे अच्छे लगते थे पर दूर से ही। और भैया थे कि कुत्ते को लपका रहे थे। एक बात मन में और भी थी कि कुत्तों को चाहे कितने ही लाड़-प्यार से पालो-पोसो पर उनका अन्त कष्टदायक ही होता है। शायद इसीलिए किसी के बुरे से बुरे अनिष्ट के लिए उसे कुत्ते की मौत मरने का शाप दिया जाता है।

अब उन घरों की बात जाने दें जहाँ कुत्ता पालना एक फैशन है। वे कुत्ते विदेशी होते हैं। उनका रहन-सहन घर के सदस्यों की तरह होता है। खूब सफाई रखी जाती है। उन पर खूब पैसा खर्च किया जाता है। हमारे तो न घर में कुत्तों के लिए जगह थी, न ही दिलों में। फिर यह तो देशी और गन्दा रहने वाला कुत्ता था, वह भी आवारा। पिताजी ने सुना तो खूब नाराज़ हुए।

“नालायक, गाय का हिस्सा कुत्ते को खिला रहा है? खबरदार जो तूने किसी कुत्ते को मुँह लगाया और उसे रोटी खिलाई।”

भैया सिर झुकाए सुनते रहे। किसी के गुस्से को सहन करने में वे बड़े माहिर हैं। बोलना तो दूर सिर तक नहीं उठाते। यही वजह है कि पिताजी का गुस्सा कम समय ही टिक पाता है। उस समय भैया का क्या भाव होगा, पता नहीं। पर कुत्ते के लिए उनका जो भी भाव था वह बढ़ता ही गया, कम नहीं हुआ।

माँ इस विषय में कुछ उदार थीं। भैया को गुमसुम देखकर दो-चार रोटियाँ थमा ही देती थीं। पर बात यहीं तक नहीं रही। उसे आगे बढ़नी थी सो बढ़ी। हुआ यह कि एक दिन बीसा भैया के पीछे घर तक चला आया। मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि वह उनका संकेत पाकर ही आया होगा पर उस समय वे उसे बेबसी व अपराध-बोध के साथ झिङ्कते आ रहे थे। ज़रूर पिताजी को दिखाने के लिए कि कुत्ते के आने में सचमुच उनका कोई हाथ नहीं है। लेकिन कुत्ता था कि भैया की हर झिङ्की पर थोड़ा ठिठक जाता, आँखें झपकाता, फिर दबे पाँव पीछे चल देता। और इस तरह वह चबूतरे पर आ गया और पूँछ को पिछली टाँगों में दबाता हुआ, डरने का अभिनय करता बैठ गया। भैया ने पिताजी की ओर देखते हुए उसे एक ज़ोर की ठोकर मारी, “चल, उठ... चल यहाँ से...”

फिर वे एक पतली-सी सण्टी उठा लाए। सण्टी को देखते ही वह कूँ-कूँ करता हुआ पसर गया मानो कह रहा हो, “अब क्या हो गया जो मारते हो



दोस्त!” साथ ही यह भी कि, “मारो या दुतकारो, मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।”

भैया का यह तरीका कारगर रहा। सब देख-सुनकर पिताजी बोल पड़े, “उसे अब मारता क्यों है दिलीप! हौसला तो तूने ही बढ़ाया है उसका। बैठा रहेगा और क्या!”

अन्धा क्या चाहे दो आँखें। भैया फौरन उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। ऐसी आत्मीयता! मैं कुछने लगी। यह दुष्ट न होता तो मेरे भैया सिर्फ़ मुझे प्यार करते। मेरा ही ध्यान रखते। उसके प्रति नफरत के साथ मेरे मन में ईर्ष्या भी बढ़ती गई। और क्यों न बढ़ती? धुले-पुछे फर्श पर कीचड़ से सने पैरों से आकर इस तरह बैठ जाता, जैसे यह घर हमसे ज्यादा इसका हो। बैठा-बैठा आँखें मींचे हाँफता रहता। बालिश्ट भर की जीभ निकाले लार टपकाता रहता। मुझे मतली-सी आने लगती। उफ! कितना गन्दा। पूरे कलेवर में कहीं भी तो ऐसी बात न थी जिस पर प्यार आए। भैया को पता नहीं क्या दिखता है इसमें?

गर्मियों की दोपहरी में दरी बिछाकर हम ताश या कैरम खेलते तभी कहीं से आकर वह भैया के बगल में भैया से सटकर बैठ जाता। भैया मेरी ओर मुस्कुराते हुए उसकी गर्दन में हाथ डालकर दुलारते। मैं रुआँसी-सी

हो जाती। जी करता कि कसकर दो-चार डण्डे जमा दूँ। कई बार मैंने ऐसा करना भी चाहा पर डण्डा हाथ में देखते ही कमबख्त ऐसे चिल्लाता था कि डण्डा तुरन्त फेंकना पड़ता था।

भैया तो खैर उसके लिए सब कुछ थे ही। माँ और पिताजी के दुतकारने पर भी वह पीठ के बल लेटकर पूँछ हिलाकर और पंजे बढ़ाकर कृतज्ञता व्यक्त करता था। पर मुझे देखकर ऐसी उपेक्षा दिखाता कि मैं कटकर रह जाती थी। कई बार दरवाजे पर जाकर बैठ जाता था। मैं शिकायत करती, “देखो भैया, तुम्हारा बीसा मेरे हाथ से रोटी नहीं खाता।”

“तू उसे प्यार से थोड़े ही खिलाती है? देख,” और वे उसे पुचकारकर कहते, “आ बीसा, रोटी क्यों नहीं खाता?” ताज्जुब कि वह उन्हीं रोटियों को खा लेता।

“मानती हो? रहीम ने झूठ नहीं लिखा कि अभिय पियावत मान बिन... मेरा बीसा तो इन्सान से भी ज्यादा समझदार है।”

एक सुबह माँ रात की बात सुना रही थी कि “बीसा रात के ग्यारह बजे आया और आँगन में अड़कर बैठ गया। खूब भगाने के बाद भी नहीं गया। बल्कि पीठ के बल लेटकर पेट को दिखाने लगा। तब माँ ने तीन-चार



रोटियाँ बनाई। खाकर वह बिना कहे चला गया, आज्ञाकारी बच्चे की तरह।” माँ बड़ी आत्मीयता से सारा हाल बयान कर रही थी।

“भैया तो भैया अब माँ भी!” मेरी ईर्ष्या की आग में तो जैसे धी पड़ गया।

“ठीक है माँ! हमसे तो वह कुत्ता ही भला। अगर मैं भूखी होती तो क्या तुम रोटी बनातीं? नहीं। कह दर्तीं, सो जा बेटी, देर रात की खाई रोटी हजाम नहीं होती। वाह रे जानवर...।”

“नहीं बेटे नहीं,” माँ समझाने लगी। “बेचारा जानवर है, आस लगाए आता है।” माँ कहती रही पर मेरी समझ में केवल एक बात आ रही थी कि वह कुत्ता मेरे लिए मनहूस है। उसके कारण मैं अकेली होती जा रही थी।

कभी-कभी मेरा मन होता कि जिस तरह भैया को देखकर पूँछ हिलाता है, पंजे बढ़ाता है, मुझे देखकर भी करे। पर मैं अपनी घृणा से उबर ही नहीं पाई।

एक बार किसी ने उसके पैर में कुल्हाड़ी मार दी। घाव गहरा था। हड्डी दिखने लगी थी। बरसात के दिन थे। चारों ओर वैसे भी कीचड़ होती है गाँव में। ऊपर से कुत्ते का घाव। आखिर वही हुआ जिसका डर था। पहले जब वह लँगड़ाता, छटपटाता घर की ओर आता था मैं किवाड़ लगा लेती थी। पर अब नहीं लगा पाती और वह अन्दर आ जाता, भगाने से भी नहीं भागता। तब मेरा जी खराब हो जाता और मैं कहती, “भैया आफत पाली तुमने है पर भुगतेंगे हम सब... यह यहीं सड़ेगा, मरेगा।”

भैया चुपचाप सबकी बातें सुनते रहते। अपने दोस्त की पीड़ा को खुद महसूस करते रहते। कहते तो केवल इतना कि, “अगर तुम्हें कुछ इसी तरह हो जाए तो...।” फिर वे कहीं से दवा ले आते और अपने दोस्त हेमन्त की मदद से बीसा के घाव में लगाते। वह पीड़ा से तड़पता दूर भागने की कोशिश करता पर भैया की डाँट खाकर चुप हो जाता।

एक दिन भैया ने खुश होकर बताया कि बीसा ठीक हो गया है। पर मुझे कोई फर्क नहीं पड़ा क्योंकि कुत्ते का घर में आना और भैया का उसके प्रति लगाव बढ़ाना कम नहीं हुआ था। बल्कि अब वे मुझसे कुछ कट-से गए थे। पहले की तरह न मुझे चिढ़ाते थे न मनाते थे। बेशक, इसकी वजह वह कुत्ता ही था।

इस घटना के लगभग तीन महीने बाद एक दिन मैंने भैया को बहुत उदास व गुमसुम देखा। पेट दर्द का बहाना बनाकर लेटे रहे। खाना नहीं खाया। कभी तो अकेले ही कमरे में दिखे तो कभी छत पर। मुझसे उनकी बेरुखी न देखी गई। पास जाकर पूछा, “भैया क्या बात है? कोई परेशानी है?” भैया ने कोई जवाब नहीं दिया। मैंने निकटता बढ़ाने के लिए पूछा, “भैया, कल से बीसा नहीं आया।” उन्होंने इस बात पर मुझे अजीब-सी नज़रों से देखा, होंठ कुछ हिले, फिर मुँह फेर लिया।

मैंने फिर पूछा, “भैया कुछ बोलते क्यों नहीं?

“तुम्हें क्या लेना-देना है बीसा से?... नहीं आ रहा तो तुम्हारे लिए खुशी की बात है... हँसो... तालियाँ बजाओ।” अचानक भैया पलटकर बोले। मैं सकते मैं आ गई। पहली बार ऐसा रूप देखा था अपने भैया का। वे मुझे बहुत प्यार करते थे। अपनी हर बात मुझे एक दोस्त की तरह बताते थे, “बीनू यह बात... बीनू वह बात।” पढ़ाई खत्म करके घर बैठे थे पर कभी नहीं लगा कि वे पढ़े-लिखे, घर बैठे नौजवान हैं। मैं उनसे आठ साल छोटी हूँ पर उनकी हर बात की राज़दार रही हूँ। उनकी हर खुशी में शरीक। पिताजी से भी कोई बात मेरे द्वारा ही कहलवाते हैं। वही मेरे भैया इतने दुखी और नाराज़?

दो दिन बाद हेमन्त ने मुझे बताया कि बीसा दुनिया को छोड़ गया। सुनकर मेरा तो दिमाग चकरा गया। बीसा मर भी गया? कब? कैसे?

जब बीसा एक दिन घर नहीं आया तो भैया व हेमन्त उसे ढूँढ़ने गए थे। गाँव से कुछ दूर एक आम के पेड़ के नीचे उन्होंने बीसा को तने के सहारे सोते हुए पाया। उन्होंने दूर से बीसा को पुकारा। जो बीसा उनकी आहट सुन के दौड़ पड़ता था, वह आवाज देने पर भी नहीं उठा। आशंकित से जब वे पास पहुँचे तो पाया कि बीसा अब कभी नहीं उठेगा।

भैया देर तक चुपचाप आँसू बहाते रहे। फिर दोस्त के साथ मिलकर उसे समाधि दी। सुनकर मेरा दिल हिल गया।

बीसा मरा भी तो इतनी दूर जाकर। क्या मेरे विश्वास को झुरलाने के लिए कि “वह मरते दम तक हमें तंग करेगा।” अकेला, निरीह एकान्त में जाकर वह इस तरह दुनिया से चला गया। मेरी आँखें छलछला उठीं। बीसा ने जैसे मेरी घृणा और सफाई के आड़म्बर पर तमाचा मार दिया था। काश! मैं उसे समझ पाती और भैया की तरह उससे एक रिश्ता बना पाती।



गिरिजा कुलश्रेष्ठ

शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, ग्वालियर में व्याख्याता। लम्बे समय से बाल कहानियाँ और कविताएँ लिख रही हैं। रचनाएँ चकमक, समझ झरोखा, पलाश, बालवाटिका, हिन्दुस्तान, दैनिक भास्कर आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। दो कहानियाँ चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट से पुरस्कृत। बाल कहानी संग्रह अपनी खिड़की से तथा बाल खण्डकाव्य ध्रुवगाथा प्रकाशित। बाल उपन्यास गिल्टू की सैर तथा किशोर उपन्यास बिना छत वाला घर रचनाधीन हैं।

सौम्या शुक्ला

11वीं कक्षा में पढ़ती हैं और बचपन से ही रंगों से खेलती और आकृतियाँ गढ़ने की कोशिश करती रही हैं। धीरे-धीरे इन्हीं आकृतियों ने शकल ली। पेस्टल, पेंसिल, स्केच पेन के साथ ही डरते-डरते जलरंगों का प्रयोग किया फिर उसमें आनन्द की अनुभूति पाई। कई डॉक्यूमेंट्री फिल्मों की सी.डी./ डी.वी.डी. व कुछ पत्रिकाओं के लिए आवरण चित्र बनाए। एकलव्य की पत्रिका संदर्भ के लिए भी चित्रांकन। सृजनात्मक कला के लिए राष्ट्रीय बालश्री सम्मान-2011 से नवाज़ी गई। कला जगत में ही आगे बढ़ने की इच्छुक हैं।

एकलव्य

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो पिछले कई वर्षों से शिक्षा एवं जनविज्ञान के क्षेत्र में काम कर रही है। एकलव्य की गतिविधियाँ स्कूल में व स्कूल के बाहर दोनों क्षेत्रों में हैं।

एकलव्य का मुख्य उद्देश्य ऐसी शिक्षा का विकास करना है जो बच्चों से व उसके पर्यावरण से जुड़ी हो; जो खेल, गतिविधि व सृजनात्मक पहलुओं पर आधारित हो। अपने काम के दौरान हमने पाया है कि स्कूली प्रयास तभी सार्थक हो सकते हैं जब बच्चों को स्कूली समय के बाद, स्कूल से बाहर और घर में भी, रचनात्मक गतिविधियों के साधन उपलब्ध हों। किताबें तथा पत्रिकाएँ इन साधनों का एक अहम हिस्सा हैं।

पिछले कुछ वर्षों में हमने अपने काम का विस्तार प्रकाशन के क्षेत्र में भी किया है। बच्चों की पत्रिका चक्रमक के अलावा लोत (विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स) तथा शैक्षणिक संदर्भ (शैक्षिक पत्रिका) हमारे नियमित प्रकाशन हैं। शिक्षा, जनविज्ञान एवं बच्चों के लिए सृजनात्मक गतिविधियों के अलावा विकास के व्यापक मुद्राओं से जुड़ी किताबें, पुस्तिकाएँ, सामग्री आदि भी एकलव्य ने विकसित एवं प्रकाशित की हैं।

वर्तमान में एकलव्य मध्य प्रदेश में भोपाल, होशंगाबाद, पिपरिया, हरदा, देवास, इन्दौर, उज्जैन, शाहपुर (बैतूल) व परासिया (छिन्दवाड़ा) में स्थित कार्यालयों के माध्यम से कार्यरत है।

इस किताब की सामग्री एवं सज्जा पर आपके सुझावों का स्वागत है। इससे आगामी किताबों को अधिक आकर्षक, रुचिकर एवं उपयोगी बनाने में हमें मदद मिलेगी।

सम्पर्क: books@eklavya.in
ई-10, शंकर नगर बी.डी.ए. कॉलोनी, शिवाजी नगर,
भोपाल - 462016